(सन्देश-९) - जुलाई २०११ का प्रथम पाक्षिक निवेदन -

प्रश्नोत्तर

पंक्ति संख्या

प्र0-१. बहुधा देखा जाता है कि आध्यात्मिक सिद्धान्त समझ में आ भी जाते हैं, हम मान भी लेते हैं, किन्तु जीवन में प्रयोग करने में संकोच रहता है। ऐसा क्यों होता है?

प्र0-२. साधन भी करते हैं जैसे जप, स्वाध्याय,सत्संग आदि - किन्तु यह प्रतीति नहीं होती कि कुछ सही दिशा में प्रगति हो रही है। इसका निश्चय कैसे हो?

प्र0-३. भगवान का हर विधान मंगलमय होता है, यह जानते हुये भी कुछ विधान अनुकूल और कुछ प्रतिकूल क्यों लगते हैं? ५

उ0 इन तीनों प्रश्नों का एक ही उत्तर है। वह है - जीवन के प्रारम्भ काल से ही धारण किये हुए और गहरे बैठे हुए कामनापूर्ति के भयंकर संस्कार। आध्यात्मिक सिद्धान्तों और साधनों का ज्ञान और उनका पोषण करते हुए तो जितना प्रयास हुआ है, वह इन नये संस्कारों के जड़ में बैठने के लिये अपर्याप्त है। विडम्बना यह है कि साधन करते हुए भी कामनापूर्ति के १०
संस्कारों का पोषण अभी वर्तमान में चालू भी रहता है। सामाजिक और पारिवारिक वातावरण तो कामनापूर्ति के प्रयासों (रजोगुण) अथवा निष्क्रियता या प्रमाद (तमोगुण) से पूर्णतया आच्छादित है। अपने प्रयासों से बहुत सीमा तक आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधन मन में बैठने लगते हैं, किन्तु इसमें शीघ्र सफलता केवल दृढ़ भगवद्विश्वास और भगवत्कृपा से ही मिलती है। इसके लिये **"सबसे सुगम, निरापद एवं पतन के भय से सर्वथा शून्य उपाय** १५
है - अधिक से अधिक भगवान् पर निर्भर होना" *(आस्तिकता-सार, पृ0 3, पंक्ति सं0 1 से 3 तथा पृ0 4 पंक्ति सं0 43 से 47)*। भगवान् पर निर्भरता के लिये यह आवश्यक है कि जीभ से भगवन्नाम निरन्तर होता रहे, चाहे मन लगे या न लगे। साथ ही, भगवान की आज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिये और उल्लंघन होने पर मन में सच्चा पश्चाताप होना चाहिये। २०

भगवद्विश्वास दृढ़ करने और कुसंग के त्याग के लिये हर समय तैयार रहना पड़ेगा। कुसंग किसी व्यक्ति या परिस्थिति से नहीं अपितु अपने ही मन में उनसे सुख पाने की इच्छा से होता है। अतः इसमें परिवार या कार्यक्षेत्र को छोड़ना बिल्कुल आवश्यक नहीं है। उनके प्रति प्रत्येक धर्मसंगत एवं न्यायसंगत कर्म अपनी सामर्थ्य के अनुसार करते रहना चाहिये, तथा **"सबसे सम्मान, प्रेम, हित और सत्य - इन चारों बातों को ध्यान में रखकर ही** २५
व्यवहार कीजिये" *(आस्तिकता-सार, पृ0 2, पंक्ति सं0 63-64)*। कुछ भी छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। छोड़नी है - संसार के संग से सुख मिलने की आशा। ऐसा करने से भगवत्कृपा के प्रकाश और भगवत्प्रेम का अनुभव होने लगता है। उससे मन में आनन्द की वृद्धि होती है। किन्तु फिर यह सावधानी रखनी होगी कि उस आनन्द में रमण या उसका भोग न हो, अपितु भगवान् की प्रीति के लिये निरन्तर कर्म होता रहे, तथा उत्साह और ३०
प्रफुल्लता में वृद्धि हो।

याद रखें, विषयों में सुख नहीं है, सुख एकमात्र भगवान् में ही है।